



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-2.0

Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025

Page No- 418-422

DOI: 10.71037/Shodhaamrit.v2i2.66

©2025 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author :

Monika parihar

PhD Scholar, Department of
Hindi, Saurashtra university
rajkot (Gujrat).

Corresponding Author :

Monika parihar

PhD Scholar, Department of
Hindi, Saurashtra university
rajkot (Gujrat).

नई हिन्दी कविता में प्रकृति-बोध और पर्यावरणीय संकट की अभिव्यक्ति

सारांश : यह शोध-पत्र नई हिन्दी कविता में प्रकृति-बोध और पर्यावरणीय संकट की अभिव्यक्ति का साहित्यिक-आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यहाँ “नई हिन्दी कविता” को संकीर्ण आंदोलन-परक अर्थ में नहीं, बल्कि ‘तार सप्तक’ से विकसित उस काव्य-धारा के रूप में ग्रहण किया गया है, जिसमें प्रकृति बाह्य दृश्य के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य के अस्तित्व, श्रम, स्मृति, लोक और भविष्य से जुड़ी हुई संवेदनात्मक-सांस्कृतिक उपस्थिति के रूप में सामने आती है। इस लेख में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, केदारनाथ सिंह, मंगलेश डबराल और राजेश जोशी की चुनी हुई कविताओं का निकट-पाठ करते हुए यह दिखाया गया है कि नई हिन्दी कविता में प्रकृति का अर्थ क्रमशः सौंदर्य, सह-अस्तित्व, लोक-संस्कृति, जैविक जीवन और पारिस्थितिक न्याय से जुड़ता जाता है। साथ ही, अकाल, बाढ़, जल-अभाव, जंगल-कटाई, पहाड़ी जीवन के संकट, विस्थापन और मनुष्य की उपभोगवादी वृत्ति जैसी स्थितियाँ कविता में पर्यावरणीय संकट के रूप में उभरती हैं। अध्ययन का निष्कर्ष है कि नई हिन्दी कविता ने प्रकृति को संसाधन नहीं, संबंध माना; और यही कारण है कि उसकी पर्यावरणीय चेतना आज के जलवायु-पीड़ित समय में और अधिक प्रासंगिक हो उठी है।

मुख्य शब्द : नई हिन्दी कविता, प्रकृति-बोध, पर्यावरणीय संकट, पारिस्थितिक चेतना, लोक-संवेदना, सह-अस्तित्व, पर्यावरण-विमर्श।

परिचय : हिन्दी कविता की दीर्घ परंपरा में प्रकृति सदा उपस्थित रही है, पर नई हिन्दी कविता में उसका स्वरूप निर्णायक रूप से बदलता है। यहाँ प्रकृति केवल ऋतु-वर्णन, शृंगारिक पृष्ठभूमि या आत्म-प्रक्षेप का माध्यम नहीं रहती; वह व्यक्ति और समाज के बीच, स्मृति और इतिहास के बीच, ग्राम और नगर के बीच, और मनुष्य तथा पृथ्वी के बीच संबंध की जटिल भूमि बन जाती है। इसीलिए नई कविता को समझने के लिए केवल उसके शिल्प या व्यक्तिवादी संवेदना पर नहीं, बल्कि उसकी प्रकृति-दृष्टि पर भी गंभीरता से विचार करना आवश्यक है (नामवर सिंह, 2020; रामविलास शर्मा, 2018)। यही दृष्टि आगे चलकर पर्यावरणीय

संकट की पहचान का भी आधार बनती है, क्योंकि जहाँ प्रकृति संबंध के रूप में देखी जाती है, वहाँ उसका विनाश केवल भौतिक हानि नहीं, सांस्कृतिक और नैतिक विघटन भी बन जाता है।

नई हिन्दी कविता की महत्ता इस बात में है कि वह प्रकृति को दूर से निहारती नहीं, उसके भीतर मनुष्य की नियति को पढ़ती है। अज्ञेय के यहाँ घास, नदी, द्वीप और आकाश आत्म-अनुभूति के प्रदेश हैं; भवानीप्रसाद मिश्र के यहाँ जंगल अपनी चुप्पी में भी जीवित और धड़कते हुए संसार हैं; केदारनाथ सिंह के यहाँ पृथ्वी, जल, सारस, धूप, दूब और धान साधारण जीवन की गहरी जैविकता को बचाते हैं; मंगलेश डबराल के यहाँ पहाड़ और जंगल विकास-हिंसा के बीच कराहते भूगोल हैं; और राजेश जोशी के यहाँ पेड़, बादल और पानी मनुष्य की सीख, स्मृति और भविष्य से जुड़े नैतिक रूपक बन जाते हैं (अज्ञेय, 1949; केदारनाथ सिंह, 1988; मंगलेश डबराल, 1981; राजेश जोशी, 1980)। इस प्रकार नई हिन्दी कविता प्रकृति को “दृश्य” से “जीवन-दशा” में बदल देती है।

समकालीन पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में यह प्रश्न और महत्वपूर्ण हो जाता है कि हिन्दी कविता ने इस संकट को किस प्रकार पहले से महसूस किया था। जल-अभाव, बाढ़, जंगल-कटाई, पहाड़ी समाज का हाशियाकरण, जीव-जगत का विस्थापन, और मनुष्य की आत्म-विनाशी आधुनिकता—ये सब नई हिन्दी कविता में सीधे या प्रतीकात्मक रूप से उपस्थित हैं। इस विषय पर कुछ नए शोधों ने पर्यावरण-चेतना की ओर संकेत किया है, परन्तु अभी भी साहित्यिक विश्लेषण की वह गहराई अपेक्षित है जो कविता की भाषा, बिम्ब, लोक-स्मृति, संवेदना और प्रतिरोध को एक साथ पढ़ सके (ए. एस. सुमेश, 2016; आर. पी. वर्मा, 2018; संतोष कुमारी, 2025)। प्रस्तुत शोध-पत्र उसी रिक्ति की पूर्ति का एक प्रयास है।

सैद्धान्तिक ढाँचा और शोध-विधि : इस अध्ययन का सैद्धान्तिक आधार पारिस्थितिक आलोचना, साहित्यिक निकट-पाठ और सांस्कृतिक-संदर्भ-विश्लेषण का सम्मिलित ढाँचा है। यहाँ पर्यावरण को केवल जैव-भौतिक संरचना नहीं माना गया है; बल्कि जल, मिट्टी, पेड़, फसल, पशु-पक्षी, लोक-भाषा, श्रम, स्मृति और मानवीय सह-अस्तित्व के साझा आवास के रूप में पढ़ा गया है। इस दृष्टि से नई हिन्दी कविता की प्रकृति-दृष्टि मूलतः नैतिक और सांस्कृतिक है; वह प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंध को पुनर्स्थापित करती है और संकट की पहचान को संवेदना के स्तर पर संभव बनाती है (ए. एस. सुमेश, 2016; केदारनाथ सिंह, 2020)। इसलिए इस शोध में पर्यावरण-विमर्श को किसी आरोपित सिद्धांत की तरह नहीं, बल्कि कविता के भीतर से विकसित होने वाली अर्थ-संरचना की तरह ग्रहण किया गया है।

शोध-विधि के रूप में चयनित काव्य-पाठों का तुलनात्मक निकट-पाठ किया गया है। अध्ययन के लिए अज्ञेय की हरी घास पर क्षण भर, भवानीप्रसाद मिश्र की बुनी हुई रस्सी, केदारनाथ सिंह की यहाँ से देखो, अकाल में सारस और उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, मंगलेश डबराल की पहाड़ पर लालटेन, तथा राजेश जोशी की एक दिन बोलेंगे पेड़ को आधार बनाया गया है। इनके साथ नई कविता के आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य के लिए तार सप्तक, कविता के नए प्रतिमान, नयी कविता एक साक्ष्य और नयी कविता और अस्तित्ववाद जैसी कृतियों का उपयोग किया गया है (अज्ञेय, 1968; रामस्वरूप चतुर्वेदी, 2015)। पद्धति का केंद्र यह रहा कि प्रकृति-संबंधी बिम्बों को सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थों और पर्यावरणीय संकट के संकेतों के साथ एकीकृत रूप में पढ़ा जाए।

प्रकृति-बोध की काव्य-भाषा : नई हिन्दी कविता में प्रकृति-बोध का पहला बड़ा परिवर्तन यह है कि प्रकृति अब स्थिर पृष्ठभूमि नहीं, आत्म और जगत के बीच संवाद-क्षेत्र बन जाती है। अज्ञेय की काव्य-दृष्टि में घास, नदी और खुला विस्तार आत्म-साक्षात्कार के सूक्ष्म स्थल हैं। उनकी प्रकृति-दृष्टि में कोई ग्राम्य-रोमानी आत्मविलास नहीं, बल्कि संबंध की अस्थिरता, क्षण की चमक और अस्तित्व की उर्वर निस्संगता है। इसीलिए उनकी कविता प्रकृति को वस्तु नहीं, अनुभूति की जीवित भूमि में बदल देती है। नई कविता को “एक साक्ष्य” मानने वाली आलोचना भी इसी रूपांतरण की ओर संकेत करती है कि आधुनिक कविता में अनुभव की सत्यता बाह्य अलंकरण से अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है (रामस्वरूप चतुर्वेदी, 2015)। यहाँ प्रकृति का अर्थ है—क्षणभंगुर जीवन में अर्थ की खोज।

भवानीप्रसाद मिश्र के यहाँ यह प्रकृति-बोध और अधिक लोक-सन्नद्ध हो जाता है। “सतपुड़ा के घने जंगल” में **“घास चुप है, काश चुप है”** जैसे शब्द जंगल की निस्तब्धता का नहीं, उसके भीतरी स्पंदन का बिम्ब हैं (मिश्र, 2008)। यह चुप्पी मृत नहीं, संवेदनशील है; वह जंगल की अपनी भाषा है, जिसे कविता सुनना चाहती है। भवानीप्रसाद मिश्र के जंगल में जैव-विविधता, आदिम गंध, हरित अँधेरा, ऊँची-नीची झाड़ियाँ और लताओं की उलझन मिलकर एक ऐसा जीवित पारिस्थितिक संसार रचते हैं जिसमें मनुष्य अतिथि है, स्वामी नहीं। नई हिन्दी कविता में प्रकृति के इस रूप का बड़ा महत्व है, क्योंकि यहाँ जंगल किसी “दृश्य-चित्र” के रूप में नहीं, अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ उपस्थित है (रामविलास शर्मा, 2018)। यह बोध आगे चलकर पर्यावरणीय नैतिकता की भूमि तैयार करता है।

केदारनाथ सिंह के यहाँ प्रकृति-बोध सबसे अधिक मानवीय और जैविक रूप लेता है। उनकी कविता **“यह पृथ्वी रहेगी”** में पृथ्वी कोई बाहरी ग्रह नहीं, मनुष्य की “हड्डियों”, “ज़बान” और “नश्वरता” में बसी हुई जीवन-शक्ति है (केदारनाथ सिंह, 1999)। इसी तरह “पानी में घिरे हुए लोग” में बाढ़-पीड़ित मनुष्य **“प्रार्थना नहीं करते”**, बल्कि जल के सामने अपने अस्तित्व का साहस बचाए रखते हैं; वे **“थोड़ी-सी आग”** बचाकर रखते हैं (केदारनाथ सिंह, 1999)। यहाँ प्रकृति के साथ संघर्ष भी है और सह-अस्तित्व भी। केदारनाथ सिंह की कविता का बड़ा गुण यह है कि वह पृथ्वी, जल, धूप, धान, दूब और मनुष्य के बीच एक साझा जीवन-व्याकरण रचती है। इसीलिए उनके यहाँ प्रकृति-बोध किसी भावुक हरित-स्मृति में नहीं बदलता, बल्कि लोक-जीवन की जिजीविषा और नैतिक दृढ़ता का रूप लेता है (नामवर सिंह, 2020)।

राजेश जोशी की कविता प्रकृति-बोध को एक अलग प्रकार की निरीह जिज्ञासा और जीवन-शिक्षा के रूप में सामने लाती है। **“पेड़ क्या करता है दिन-भर?”** जैसा प्रश्न बाल-सुलभ दिखाई देता है, पर वास्तव में आधुनिक मनुष्य की उस विस्मृति को उद्घाटित करता है जिसमें पेड़ के श्रम, उसकी श्वसनशीलता और उसकी मौन उपस्थिति का अनुभव मिटता जा रहा है (जोशी, 1980)। दूसरी ओर “बादल क्या है” में **“पानी के फूल”** जैसी छवि बादल, समुद्र, धरती और आंतरिक जल के एकात्म संबंध को उजागर करती है। नई हिन्दी कविता में यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण विकास है कि प्रकृति ज्ञानात्मक वस्तु नहीं, संवेदनात्मक सहचर बनती है। वह मनुष्य को विनम्र बनाती है, क्योंकि वह सिखाती है कि संसार केवल मानवीय उपयोगिता से नहीं चलता।

पर्यावरणीय संकट और प्रतिरोध : नई हिन्दी कविता का दूसरा बड़ा पक्ष यह है कि वह प्रकृति के सौंदर्य की रचना भर नहीं करती, बल्कि उसके विघटन को भी दर्ज करती है। केदारनाथ सिंह की “अकाल में सारस” इस संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कविता है। वहाँ सारस **“पानी की तलाश में”** शहर आते हैं; एक बूढ़िया करुणा से “एक जल-भरा कटोरा” रख देती है, पर पक्षी उसे देखे बिना लौट जाते हैं (केदारनाथ सिंह, 1988)। इस छोटे-से दृश्य में पूरा पर्यावरणीय त्रासद-वृत्तांत निहित है—जल-चक्र का टूटना, पक्षियों का विस्थापन, शहर और प्रकृति का अलगाव, तथा मनुष्य की करुणा की सीमाएँ। बूढ़िया की करुणा नैतिक रूप से उजली है, पर वह उस बड़े पारिस्थितिक विनाश की भरपाई नहीं कर सकती जिसने सारसों को उनके जल-प्रदेश से बेदखल किया है। यहाँ कविता पर्यावरणीय संकट को आँकड़ों की भाषा में नहीं, बल्कि एक टूटे हुए जैविक संबंध की पीड़ा में व्यक्त करती है।

मंगलेश डबराल की “पहाड़ पर लालटेन” पर्यावरणीय संकट को वर्ग, श्रम और भूगोल की सम्मिलित त्रासदी के रूप में सामने लाती है। कविता में **“जंगल में लगातार कुल्हाड़ियाँ चल रही हैं”** और **“अगले मौसम के जबड़े तक पहुँचते पेड़”** जैसी पंक्तियाँ केवल वन-नाश का समाचार नहीं देती; वे उस हिंसक विकास-व्यवस्था का रूपक बन जाती हैं जिसमें पहाड़ का जीवन, स्त्रियों का श्रम, बच्चों का भविष्य और जंगल की स्मृति एक साथ संकट में फँस जाते हैं (डबराल, 1981)। यहाँ पर्यावरण-विनाश किसी अमूर्त संकट का नाम नहीं; वह लकड़ियों के गट्टर तले बेहोश स्त्री, असमय दफ़नाए जाते बच्चे और नंगे पैर चलते बूढ़ों की जीवन-दशा है। मंगलेश डबराल की कविता इस तरह बताती है कि पर्यावरणीय संकट हमेशा सामाजिक रूप से असमान ढंग से अनुभव किया जाता

है।

नई हिन्दी कविता की गहरी उपलब्धि यह है कि वह पर्यावरण को मनुष्य-विरोधी या मनुष्य-केन्द्रित किसी एक छोर पर नहीं रखती। वह बार-बार बताती है कि पर्यावरणीय संकट असल में संबंधों का संकट है। “पानी में घिरे हुए लोग” में बाढ़-पीड़ित मनुष्य और जल आमने-सामने हैं; “सतपुड़ा के घने जंगल” में मनुष्य जंगल की भीतरी लय के सामने विनीत है; “पेड़ क्या करता है” में बाल-प्रश्न पेड़ के उपयोगितावादी अवमूल्यन को तोड़ता है। इस प्रकार कविता पर्यावरणीय प्रश्न को अनुभूति, श्रम और नैतिकता के स्तर पर पुनर्स्थापित करती है (आर. पी. वर्मा, 2018; ए. एस. सुमेश, 2016)। यही कारण है कि नई हिन्दी कविता का पर्यावरण-विमर्श घोषणात्मक नहीं, संवेदनात्मक है; लेकिन उसकी संवेदना में प्रतिरोध की बहुत गहरी शक्ति है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि नई हिन्दी कविता पर्यावरणीय संकट की अभिव्यक्ति के लिए भारी-भरकम नारे नहीं चुनती। वह बोलचाल, लोक-बिम्ब, स्मृति और मामूली वस्तुओं के सहारे संकट को दृश्य और स्पर्श बनाती है। केदारनाथ सिंह के यहाँ “थोड़ी-सी आग” बचाना, राजेश जोशी के यहाँ “पानी के फूल”, भवानीप्रसाद मिश्र के यहाँ जंगल की चुप्पी, और मंगलेश डबराल के यहाँ लालटेन—ये सब छोटे बिम्ब हैं, पर इनके भीतर पूरा पर्यावरणीय इतिहास सिमटा है। यही काव्य-भाषा नई हिन्दी कविता को आज भी प्रभावी बनाती है, क्योंकि वह पाठक को दोषी घोषित करने के बजाय उसके भीतर सुप्त पारिस्थितिक स्मृति जगाती है (केदारनाथ सिंह, 2020; संतोष कुमारी, 2025; नामवर सिंह, 2020)। नई हिन्दी कविता का यह सौंदर्यशास्त्र वस्तुतः संवेदना का पर्यावरणशास्त्र है।

परिणाम : अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि नई हिन्दी कविता में प्रकृति-बोध केवल दृश्य-सौंदर्य या भावुक प्रकृति-वर्णन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह मनुष्य के अस्तित्व, स्मृति, श्रम और सांस्कृतिक जीवन से गहराई से जुड़ जाता है। अज्ञेय के यहाँ प्रकृति आत्मानुभूति और अस्तित्व की सूक्ष्म भूमि बनती है, वहीं भवानीप्रसाद मिश्र के यहाँ जंगल अपनी चुप्पी, गंध और जीवंतता के साथ स्वतंत्र सत्ता के रूप में उपस्थित होता है। इस दृष्टि से नई कविता प्रकृति को बाहरी वस्तु नहीं, बल्कि जीवन-संबंध के रूप में पहचानती है (अज्ञेय, 1949; मिश्र, 2008)।

दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि नई हिन्दी कविता ने प्रकृति और लोक-जीवन के सहजीवी संबंध को अत्यंत संवेदनशील ढंग से व्यक्त किया है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में जल, धूप, दूब, धान, सारस और पृथ्वी जैसे बिम्ब केवल प्राकृतिक तत्व नहीं हैं; वे लोक-संस्कृति, कृषि-जीवन, मनुष्य की जिजीविषा और सामूहिक स्मृति के प्रतीक बन जाते हैं। इसी प्रकार राजेश जोशी के यहाँ पेड़ और बादल मनुष्य को विनम्रता, सहअस्तित्व और प्रकृति की मौन क्रियाशीलता का बोध कराते हैं (केदारनाथ सिंह, 1988; जोशी, 1980)।

तीसरा निष्कर्ष यह है कि नई हिन्दी कविता पर्यावरणीय संकट को अमूर्त या नारेबाज़ ढंग से नहीं रखती। वह जल-अभाव, बाढ़, जंगल-कटाई, पक्षियों के विस्थापन, पहाड़ी जीवन के विघटन और मनुष्य की उपयोगितावादी दृष्टि के रूप में उसे मूर्त बनाती है। मंगलेश डबराल की कविता में जंगल-कटाई केवल प्राकृतिक हानि नहीं, बल्कि पहाड़, स्त्री-श्रम, बच्चों के भविष्य और लोक-स्मृति का संकट बन जाती है (डबराल, 1981)। इस प्रकार नई हिन्दी कविता पर्यावरण को संसाधन नहीं, संबंध मानती है। यही उसकी सबसे बड़ी पारिस्थितिक उपलब्धि है। वह भारतीय साहित्यिक परंपरा में पर्यावरणीय आलोचना की एक सशक्त, संवेदनशील और नैतिक भूमि निर्मित करती है (सुमेश, 2016)।

निष्कर्ष : नई हिन्दी कविता ने प्रकृति को देखने की हिन्दी काव्य-परंपरा में एक महत्वपूर्ण और गहरा परिवर्तन उपस्थित किया है। पूर्ववर्ती कविता में प्रकृति प्रायः सौंदर्य, ऋतु-वर्णन, भावुकता या प्रतीकात्मकता के रूप में आती थी, पर नई कविता ने उसे मनुष्य के जीवन-संबंधों, श्रम, स्मृति, भूख, भाषा और सांस्कृतिक अस्तित्व से जोड़कर देखा। इसीलिए नई हिन्दी कविता में प्रकृति केवल बाहर फैला हुआ दृश्य नहीं है, बल्कि मनुष्य के भीतर बसने वाली जीवित संवेदना है। अज्ञेय के यहाँ प्रकृति आत्मानुभूति का सूक्ष्म प्रदेश बनती है, भवानीप्रसाद मिश्र के

यहाँ जंगल अपनी स्वतंत्र जैविक सत्ता के साथ उपस्थित होता है, और केदारनाथ सिंह के यहाँ पृथ्वी, जल, धूप, दूब और सारस लोक-जीवन की जिजीविषा से जुड़ जाते हैं (अज्ञेय, 1949; मिश्र, 2008; केदारनाथ सिंह, 1988)।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि नई हिन्दी कविता पर्यावरणीय संकट को केवल प्राकृतिक संसाधनों की क्षति के रूप में नहीं देखती। पेड़ों का कटना, नदियों का सूखना, पक्षियों का विस्थापित होना, पहाड़ों का उजड़ना और जल-अभाव—ये सब मनुष्य और प्रकृति के टूटते नैतिक संबंधों के संकेत हैं। मंगलेश डबराल के यहाँ जंगल-कटाई पहाड़ के सामाजिक जीवन, स्त्री-श्रम और लोक-स्मृति का संकट बन जाती है, जबकि राजेश जोशी के यहाँ पेड़ और बादल मनुष्य को सह-अस्तित्व की मौन शिक्षा देते हैं (डबराल, 1981; जोशी, 1980)।

अतः कहा जा सकता है कि नई हिन्दी कविता का प्रकृति-बोध मूलतः पारिस्थितिक, मानवीय और सांस्कृतिक है। वह प्रकृति को संसाधन नहीं, संबंध मानती है। आज जब पर्यावरणीय संकट वैश्विक और तात्कालिक दोनों रूपों में सामने है, तब नई हिन्दी कविता हमें यह स्मरण कराती है कि पृथ्वी की रक्षा केवल नीतियों से नहीं, बल्कि भाषा, संवेदना, स्मृति और सह-अस्तित्व की नैतिक चेतना से शुरू होती है। यही उसकी स्थायी प्रासंगिकता और साहित्यिक गरिमा है (ए. एस. सुमेश, 2016)।

संदर्भ सूची :

1. अज्ञेय. हरी घास पर क्षण भर. प्रगति प्रकाशन, 1949.
2. अज्ञेय, संपा. तार सप्तक. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968.
3. जोशी, राजेश. एक दिन बोलेंगे पेड़. संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़, उत्तर प्रदेश, 1980.
4. डबराल, मंगलेश. पहाड़ पर लालटेन. राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1981.
5. मिश्र, भवानीप्रसाद. बुनी हुई रस्सी. सरला प्रकाशन, 2008.
6. रामविलास शर्मा. नयी कविता और अस्तित्ववाद. राजकमल प्रकाशन, 2018.
7. रामस्वरूप चतुर्वेदी. नयी कविता एक साक्ष्य. लोकभारती प्रकाशन, 2015.
8. वर्मा, आर. पी. "समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना." इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एंड इनोवेटिव रिसर्च स्टडीज़, खंड 6, अंक 1, 2018, पृ. 39-43.
9. सिंह, केदारनाथ. अकाल में सारस. राजकमल प्रकाशन, 1988.
10. सिंह, केदारनाथ. उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ. राजकमल प्रकाशन, 1995.
11. सिंह, केदारनाथ. यहाँ से देखो. राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999.
12. सिंह, केदारनाथ. पानी की प्रार्थना: पर्यावरण विषयक कविताएँ. राजकमल प्रकाशन, 2020.
13. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020.
14. सुमेश, ए. एस. समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श. अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016.
15. कुमारी, संतोष. "हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना: एक समीक्षात्मक अध्ययन." इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च, खंड 11, अंक 4, 2025, पृ. 5-8.

•